International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 11 Issue 09, September 2021
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

पर्यावरण संरक्षणः विभिन्न आयाम

डॉ0 कल्पना सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर,समाज"ाास्त्र विभाग
महाराजा बिजली पासी राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, आ"ियाना, लखनऊ

सरां"ाः–

पर्यावरण एक ऐसा बहुआयामी विषय है, जो कि जैविक तथा अजैविक घटकों के निरन्तर अन्तक्रियाओं के कारण प्रभावित तथा परिवर्तनशील होता रहता है। पर्यावरण तथा इससे सम्बन्धित विषय मानव समाज एवं जीवन के सभी मागों को प्रभावित करते है। पर्यावरण का सम्बन्ध जितना प्रकृति से है, उतना ही इसका जुड़ाव मानव की गतिविधियोंसे भी है।

पर्यावरण एक ऐसा तंत्र है । जिसमें मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीवधारी भी उसके महत्वपूर्ण घटक है, जो पर्यावरण संतुलन आवश्यक जीवन की स्थितियों को बनान में मनुष्यों से अधिक योगदान देते हैं, विगत दो शताब्दियों से मानव मे पर्यावरण का जितना नुकसान किया, उतना तो प्राकृतिक आपदाओं तथा अन्य जीवा ने भी नहीं किया। 21वीं शताब्दी में मानव के समक्ष पर्यावरणीय ऐसी स्थिति आ गयी है, जिसका दुष्परिणाम सभी के समक्ष है। मानव के अन्धाधुन्ध प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से न केवल पर्यावरण, जलवायु तथा पारिस्थितिकी असंतुलन के मुद्दे हमारे समक्ष है, अपितु भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के आगे जीवनदायक स्थितियों में कमी की चनाती भो खड़ी हो गयी है, जिससे उनके सामने भोजन, पानी, ऊर्जा, जलवायु, खनिज एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों की अनुपलब्धता जैसी विकट परिस्थितियाँ चुनौती बनकर खड़ी है।

मुख्य शब्द :–इकोलॉजी, परिवृत्तीय कारक, अधोसंरचना, अभिवृत्ति, आवरण, उपभोक्तावाद, विस्थापन, अपशिष्ट पदार्थ

उद्देश्यः–

1 पर्यावरण की अवधारणा व उसके बहुआयामी पक्ष को समझना।
2 पर्यावरणीयसमस्याआ या मुद्दों को समझने का प्रयास करना।
3 पर्यावरणीय समस्याओं के विभिन्न कारकों या घटकों को जानना।
4 पर्यावरणोय संकट या चुनौतियों को दूर करने के सरकारी व गैर सरकारी प्रयासों को समझना।

प्रस्तावनाः–

पर्यावरण अंग्रेजी शब्द इनवायरमेंट का भाषायी अनुवादहै। हिन्दी में पर्यावरण दो शब्दों 'परि' एव 'आवरण' से बना है। 'परि' का तात्पर्य ह चारों तरफ और 'आवरण' का अर्थ घेरा है, अर्थात् हमारे चारों तरफके घेरे को पर्यावरण कहते है। 'पर्यावरण' शब्द समस्त परिस्थितियों की सम्पूर्णता है, जो जीवा के जीवन को प्रभावित करती हैं। क्रिस पार्क ने पर्यावरण को उन दशाओं का योग कहा है जो मानव को निश्चित समयावधि में नियत स्थान पर आवृत्त करती है।

पर्यावरण के लिये प्रारम्भ में पारिस्थितिकी या इकोलोजी शब्द का उपयोग किया जाता था। ग्रीक भाषा के 'ओइकोस' शब्द से 'इकोलोजी' शब्द की उत्पत्ति हुई, जिसका ग्रीक में अभिप्राय'गृह' या 'वास स्थान' से होता है जहां जीव रहते है। जर्मन वैज्ञानिक फिटिंग न, पर्यावरण को जीवों के परिवृत्तीय कारकों का योगदान माना है, जिसमे जीवन की परिस्थितियों के सम्पूर्ण तथ्य आपसी सामंजस्य वातारण को बनाते हैं। डेविस ने पर्यावरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि मनुष्य के सम्बन्ध में पर्यावरण से अभिप्राय भूतल पर मानव के चारों ओर फले उन सभी भौतिक स्वरूपो से है, जिनसे वह निरन्तर प्रभावित होता रहता है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका के अनुसार, पर्यावरण उन सभी बाह्य प्रभावों का समूह है, जो जीवों को प्राकृतिक, भौतिक एव जैविक शक्ति से प्रभावित करते हैं तथा प्रत्येक जीवों को आवृत्त किया है। पर्यावरणविद डौबेनामिर (1959) ने पर्यावरण के सात

तत्वों, मिट्टी, वायु, ताप प्रकाश, अग्नि तथा जैविक आदि का उल्लेख किया है। वनस्पतिवेत्ता ओस्टिंग 1948 ने पर्यावरण के पाँच घटकों पदार्थ– मृदा एवं जल, दशायें–तापक्रम एवं प्रकाश, बल– वायु एवं गुरुत्व, जीवजगत– वनस्पति एवं जीव–जन्तु तथा समय का वर्णन किया है।

लेविन ये पर्यावरण को व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान उस पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया– भौतिक पर्यावरण, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण एवं मनोवैज्ञानिक पर्यावरण। भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत जलवायु, मौसम, भौगोलिक परिस्थितियाँ तथा भौतिक अधोसंरचना को सम्मिलित किया जाता है, जिसमे व्यक्ति निवास करता है। मानवजाति पर भौगोलिक दशाओं और जलवायु का गहरा प्रभाव पड़ता है। अलग–अलग भौगोलिक दशाओं में रहने वाले व्यक्तियों की शारीरिक संरचना, कार्यक्षमता, रंग–रूप, रहन–सहन तथा व्यवहारों में भिन्नता या भेद को देखा जा सकता है। जलवायु का प्रभाव की कार्यकुशलता और क्षमतापरभी पड़ता है एवं जलवायु तथा अन्य भौगोलिक दशायें जीवो के जीन एवं डी. एन. ए. का भी प्रभावित करती है जिसके कारण मानव तथा जीवों की नस्लों में अन्तर उत्पन्न हो जाता है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण के अर्नतगत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है। जिसमे व्यक्ति रहता है। नैतिक, सामाजिक–सांस्कृतिक तथा भावनात्मक शक्तियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्त विकास तथा व्यवहार को निरन्तर प्रभावित करती है। जिसके कारण व्यक्ति की इच्छायें, प्रेरणाएं मानसिकता, अभिवृत्ति तथा मनोसामाजिक गुणों का विकास होता है। कुर्टलेविन ने मनोवैज्ञानिक वातावरण दो प्रकारो में विभाजित किया है परन्तु दोनों पर्यावरण प्रत्येक व्यक्ति के लिये भिन्न–भिन्न होते हैं। उन्होंने माना कि प्रत्येक व्यक्ति का एक अपना मनोवैज्ञानिक पर्यावरण होता है, जिसमें वह रहता है, जिसे वह जीवन विस्तार की संज्ञा देते हैं। मनोवैज्ञानिक पर्यावरण किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने में सहायता करता है। मनोवैज्ञानिक पर्यावरण व्यक्ति के सद्गुणों व उद्देश्यों को मिलाकर बनता है। जब व्यक्ति अपने लक्ष्यों का प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसमें कुण्ठा उत्पन्न होती है। एसी स्थिति में व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में नये बदलाव कर परिस्थितियों से समायोजन करने का प्रयास करता है। भौतिक पर्यावरण को विशेषताओं तथा दशाओं के आधार पर तीन उपसमूहों में विभाजित किया जा सकता है जो इस प्रकार है– ठोस, तरल तथा गस। उपरोक्त विभाजन क आधार पर भौतिक पर्यावरण को भागां में बांटा जा सकता है स्थलमण्डल पर्यावरण जिसमे पृथ्वी की ऊपरी ठोस सतह को सम्मिलित किया जाता है। तकनीको रूप से स्थलम.डल में धरती व समुद्र की तलहटी दोनों ही आते हैं। जलमण्डल पर्यावरण, जलमण्डल जल का वह आवरण है जो स्थलमण्डल को घेरे हुये है। यह महासागरों, झीलों ,एवं नदियों के रूप में विद्यमान है। वायुम. डल पर्यावरण, यह ,एक गैसीय आवरण ह जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुये है।

पर्यावरण व सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध मे होता है विकास की दौड़ में मानव ने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यधिक अविवेकपूर्ण ढंग से किया गया है। जिसके दुष्परिणाम बीसवीं शताब्दी के मध्य से ही सामने आने लगे थे। औद्योगिकरण कारण 19 वीं सदी में आर्थिक उत्पादन बढ़ने तथा व्यापार क लिये बडी बड़ी मशीनों के प्रयोग से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्याधिक तीव्र गति से होने लगा जिससे प्राकृतिक संसाधनों के समाप्त होनकासंकट 1970 के दशक तक विशेषज्ञों को हो गया तथा यह तथ्य सत्य सिद्ध हुआ कि विकास के नाम पर आर्थिक स्थिति का मापन तथा उसकी गतिविधियों को पैमाना मानकर आगे चलना चुनौतीपूर्ण हो गया। पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक चुनौतियाँ तथा समस्यायें सामने आ रही थी। जो इस प्रकार हैं :– आर्थिक विकास की विद्यमान रणनीतियाँ विश्व के संसाधनों का अत्याधिक तीव्र गति से उपयोग किया जा रहा जिससे भावी पीढियों को पर्यावरण की गंभीर समयाओं सामना करना पड़ेगा अतः आवश्यकता ऐसे विकास मॉडल की जो तात्कालिक चुनौतियों के समाधान के साथ भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के अवसरों को सुरक्षित रख सके। 1987 में प्रकाशित रिपोर्ट ''हमारा साझा भविष्य'' में विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग ने सम्पोषी विकास की संकल्पना दी तथा स्पष्ट किया कि सम्पोषी विकास वह प्रक्रिया है जो आने वाली पीढ़ी के लिये उनकी आवश्यकताओं को बिना प्रभावित किये वर्तमान के लिये आवश्यकता की पूर्ति सुनिश्चित कर सके। सम्पोषीविकास के केन्द्र में पर्यावरण व सामाजिक मूल्य है जो ऐसे विकास के मूल्यों पर आधारित है जो पृथ्वी के समस्त प्राणियों के अस्तित्व, उनकी आवश्यकता, प्राकृतिक संसाधनों पर उनके अधिकार तथा पहुँच विकास के परिणाम का समान वितरण

इत्यादि दृष्टिकोण को प्रेषित करता है व साथ ही पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन व प्रकृति के प्रति सम्मान तथा नैतिक दायित्तों का बोध कराती है।

परम्परागत विकास की एक बड़ी विसंगति यह है कि विश्व की आबादी का बड़ा हिस्सा उपलब्ध संसाधनों के एक छोटे से हिस्से के साथ अपना संघर्ष पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है। 2016 में ऑक्सफैम और क्रेडिट स्विस द्वारा जारी रिपोर्ट में होती है, । जिसमें कहा गया है विश्व में मात्र एक प्रतिशत सम्पन्न लोगों के पास विश्व कुल धन सम्पदा का 50 प्रतिशत से अधिक माग मौजूद है। शेष 99 प्रतिशत लोग आधे से कम धन सम्पदा पर निर्भर है।

परस्परागत आर्थिक विकास के समय अमीर गरीब के बीच खाई चौड़ी हो रही है। नगरीय, ग्रामीण तथा निर्जन क्षेत्रो में मानव समुदाय प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर रहा है। जिसके कारण संसाधनों के उपयोग व उपलब्धता की दिशा निर्जन क्षत्रों से ग्रामीण क्षेत्र में तथा ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों की ओर हो रहा है। इसके कारण से धन सम्पदा तथा प्राकृतिक संसाधनों के वितरण में उत्पन्न हो जाती है एवं पर्यावरणीय सम्बन्धी गम्भीर मुद्दे उत्पन्न हो जाते है।

भारत की 60 प्रतिशत से 70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास, करती है। इसके बावजूद संसाधनों के उपयोग पर नियन्त्रण तथा अधिकार– नगरीय समाज के पास सबसे अधिक है। इस प्रकार का संसाधन, वितरण. तथा उपलब्धता की असमानता के कारण न केवल सामाजिक समस्याओं जिसमें गरीबी, कुपोषण, शोषण, खाद्यानों की सीमित उपलब्धता, कृषि उत्पादों के दामों में कमी, किसानों की आत्महत्याओं की प्रवजन के गम्भीर मुद्दे दिन–प्रतिदिन चुनौतीपूर्ण बनते जा रहे, साथ ही पर्यावरणीय चुनौतियाँ भी सबसे अधिक ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को प्रभावित कर रहो है, जिसमें सूखा, खेतों का बजर होना मुख्य है।

भारतीय समाज में महिलायें पुरुषों की तुलना में अधिक कार्य करती है परन्तु उनके कार्य को समान रूप से स्वीकार्यता नहीं दी जाती है। स्त्रियाँ ग्रामीण एवं वन क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के संग्रह, पशुपालन, वकृषि सम्बन्धी कार्यो में पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करती है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं का जुड़ाव पर्यावरण व प्राकृतिक संसाधनों से अधिक है परन्तु प्राकृतिक संसाधनों पर पुरुषों का ही वर्चस्व दिखायी देता है अतः आवश्यकता है कि महिलाओ को प्राकृतिक संसाधनों पर नियन्त्रण तथा उनके उपयोग के आधिकार को वरीयता देना चाहिये। महिलाओ ने पर्यावरण संरक्षण व सृजन में अहम भूमिका निभायी है। अतः सम्पोषी विकास की रणनीतियों के नियान्वयन में सहयोग की भूमिका उत्तरदायित्व व जिम्मेदारी महिलाओं का दी जानी चाहिये।

पर्यावरण संरक्षण में नैतिक एवं परम्परागत मूल्यों का ह्रास हो रहा है। जबकि परम्परागत समाज तथा संस्कृति में प्रकृति के सम्मान को प्रतिष्ठा दो जाती है उसे देव तुल्य समझा जाता है व समय–समय पर उसके प्रति आभार व्यक्त किया जाता है इसी प्रकार आदिवासी संस्कृति मे भी वनों तथा पशुओं के लिये विशेष मान्यताएँ हैं। धार्मिक मूल्यों व मान्यताओं ने पर्यावरण संरक्षण प्रदान कर, प्राकृतिक ससाधनों व समाज के मध्य संतलन स्थापित करता है। किन्तु 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से प्रकृति से जुड़ाव का माध्यम बदल गया है। जिसके कारण पारंपरिक संस्कृति के स्थान पर आधुनिक तकनकी एवं मूल्य रहित चलन ने स्थान ले लिया जिसके कारण से लोगों में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति के प्रति परम्परागत नैतिक दृष्टिकोण का पतन होने लगा। 2013 में होने वाला केदारनाथ त्रसादी इसी उदासीनता का परिणाम है।

वतमानसमय में उपलब्ध उपभोक्तावादी संस्कृतिव अपथिष्ट पदार्थ एक अलग पर्यावरणीय मुद्दा बन गया है। प्लास्टिक के सामान, ई–कचरा, फैक्ट्रियों द्वारा निष्कासित कचरा,शहरी आवासों तथा सीवरोंद्वारा उत्पन्न अपशिष्ट का निस्तारण करने तथा पर्यावरणहानि को रोकने के लिये विभिन्न सरकारी व गैरसरकारो द्वारा विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं।

'दहिन्दू' समाचार पत्र 2016 में प्रकाशित एसोचेम– के. पी. एम. जी. की रिपोर्ट में कहा गया है भारत विश्व का पाँचवा बड़ा ई– कचरा उत्पादक बन गया है। अपशिष्ट पदार्थों का प्रबन्ध करना एक चुनौतीपूर्ण विषय है। भारत में आज भी गीले कूड़े तथा सूखे कूड़े के संग्रहण तथा निस्तारण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है।

पर्यावरणीय नैतिकता का सम्बन्ध संसाधनों के स्वामित्व तथा उसके वितरण से है। इसको विभिन्न स्तरों पर अलग–अलग ढंग से देखा जाता है। विश्व के स्तर पर इसका सम्बन्ध उत्तर–दक्षिण के विभाजन से है। इसमें एक ओर उत्तरी अमरीका तथा यूरोप के धनी औद्योगिक राष्ट

है वहीं दूसरी आर दक्षिण के विकासशील देश है। आर्थिक उन्नति वाले देशों में संसाधनों तथा ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत तथा संसाधनों की आवश्यकता अधिक है, ये सभी उन संसाधनो पर निर्भर है जो विकासशील देशों में रहने वाले गरीबों के हितों का शोषण कर रहे हैं तथावहाँ की पर्यावरणीय स्थितियों को नष्ट करने वाली बाजारवादी संस्कृति को स्थापित कर रहे है जिससे विकसित व विकासशील देशों के मध्य संसाधने की असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है। इस अन्यायपूर्ण आर्थिक व्यवहार को बदलने व व्यापार के प्रति नये व न्यायपूर्ण प्रबन्ध की आवश्यकता है।

पुनर्वास की समस्या एवं विकास प्रेरित विस्थापन पर्यावरणीय गंभीर मद्दे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात हरित क्रान्ति के लिये हजारों बांधों का निर्माण किया गये जिसके कारण हजारों–लाखों लोग विस्थापित हुने पर आज तक उनकी पुनर्वास की समस्यापै निरन्तर बनी हुई है। इसी विस्थापन की लोगों की जीवन शैली को अत्याधिक प्राभावित किया । वनसम्पदा तथा प्राकतिक संसाधनों के लिए जंगलों को बड़ी संख्या में काटा गया। साइन्टिफिक रिपोर्ट सं. 6 म प्रकाशित शोध में कहा गया कि लगातार वनों की कटाई से मानसूनी वर्षा में काफी गिरावट आयी है। रुद्रप्रयाग क्षेत्र में हजारों दारारों का आना निर्माणी विकास का ही एक दुष्परिणामह।

निष्कषः – पर्यावरण कीअवधारणा तथा उसके स्वरूप केसम्बन्ध में समाजकार्य में नवीन विचारों का उद्‌गम हो रहा है। पर्यावरण की संकीर्ण अवधारणा से निकलते हुये उसमें जैव पर्यावरण या पारिस्थितिकी तंत्र या प्रकृति की व्यक्ति, समूह समुदाय तथा उनके कल्याण एवं विकास में योगदान के संदर्भ में समाज कार्य दृष्टिकोण तथा चिन्तन में परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है। आज पर्यावरणीय मुद्दों को समाज कार्य में व्यक्तियों के मुद्दां से पृथक कर नहीं समझा जा सकता है, बल्कि व्यक्ति तथा उसके विकास की स्थितियों तथा समस्याओं को समझने के लिये पारिस्थितिकी प्राकृतिक पर्यावरण के सम्प्रत्यया तथा सत्य के आयाम से भी समझन का प्रयास किया जा रहा है। वर्तमान में उपभोक्ता के अधिकार, शहरी आवास की दशायें, गरीबी, जन्डर आधारित भेदभाव, कुपोषण, प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार, मूल निवासियों तथा स्थानीय लोगों के अधिकारों तथा उनके सामाजिक समस्याओं के मुद्दे, उपभोक्तावाद तथा पूंजीवादी संस्कृति के दुष्परिणाम तथा विकास प्रेरित विस्थापन, प्रव्रजन इत्यादि ऐसे मुद्दे है जिसे बिना पारिस्थितिकी पर्यावरण की स्थितियों व सत्यता को जाने बिना नहीं समझा जा सकता है। इसलिये पर्यावरण संरक्षण, संवर्धन तथा पारिस्थितिकी क्षेत्र की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची –

1. Gitchfield, H.J. (1978) General Climatology, Prentice Hall, New delhi
2. The Hindu (2016) India Fifth Largest Producer of e-waste, New Delhi , 25 May
3. Coates, J 2005 : The Environmental Crisis: Implications for Social work, Journal of Progressive Human Services, 16(1), PP- 25-49
4. Dminelli, L- 2012: Green Soual Work: From Environmental Gises to Environmental Justic Cambridge, polity
5. Pincus, A and A.Minahan (1973): Soual Work Practice: Model and Method, Itasca, IL: Pea cock